भाद्र कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक - २८-०९-१९६२
गाथा-३४ से ३६, ४४८, ५६५, ५६६, ८०७, ८०८, ८०९
प्रवचन-४

यह ज्ञानसमुच्चयसार, तारणस्वामी विरचित। इसमें सम्यग्दर्शन का अधिकार चलता है। सम्यग्दर्शन क्या है और उसका ध्येय क्या है ध्येय? अर्थात् कि सम्यग्दर्शन, वह तो अपनी सम्यक् श्रद्धा की एक निर्मल पर्याय है। सम्यग्दर्शन वह गुण नहीं। अपना आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो वस्तुपना, आत्मा वस्तु है, उसमें वस्तुपना अर्थात् अनन्त गुणनिधि, स्वभाव, उस स्वभाव का धारक आत्मा अकेला, पर संयोग की रुचि छोड़कर, शुभपरिणाम जो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग है, उसकी भी रुचि छोड़कर अन्तर स्वभाव सन्मुख में शुद्धता का भास होना, शुद्धता की प्रतीति होना, शुद्धता में आंशिक रमणता होना, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वरूपाचरणरूप धर्म है। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! ३३ गाथा चली न! सम्यग्दर्शन का अधिकार चलता है। नौ गाथा चली। आज ३४वीं है।

उवं ऊर्ध सद्‌भावं, परमिस्टी च संजुतं।
सर्वन्यं सुध तत्त्वं च, विंदस्थाने नमस्कृतं॥३४॥

ॐकार मन्त्र पाँचों परमेष्ठी सहित है। ॐ शब्द जो है, उसमें अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पाँचों का वह ॐ शब्द वाचक है। वाचक अर्थात् बतलानेवाला। जैसे शक्कर शब्द है, वह शक्कर पदार्थ को बतलानेवाला है। शक्कर पदार्थ में शक्कर शब्द नहीं। शक्कर शब्द में शक्कर पदार्थ नहीं। परन्तु शक्कर ऐसा शब्द वह शक्कर की डली ऐसे पदार्थ को बतलाता है। बराबर है? इसी प्रकार ॐ शब्द। ॐ, वह अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। ॐ वचन है, वाक्य है, वाचक है। वह पंच परमेष्ठी आत्मस्वरूप है, उन्हें बताता है। समझ में आया? अरिहन्त कौन है? ३४ अतिशय पुण्यसहित (वे अरिहन्त नहीं)। अरिहन्त तो आत्मा की अन्दर पूर्ण पवित्र दशा है। कहते हैं, देखो। **ॐकार मन्त्र पाँचों परमेष्ठी सहित है।** यह शब्द आया। शब्द। है?

अब '**ऊर्ध सद्‌भावं**' यह भाव आया। वह वाचक आया, यह वाच्य आया। क्या

कहते हैं ? यह पाँचों ही परमेष्ठी ॐ शब्द में समाहित हो जाते हैं। ॐ के दो प्रकार हैं—एक अक्षररूप, एक स्वभावरूप। समझ में आया ? ॐ के दो प्रकार—एक अंक्षररूप, एक स्वभावरूप। तो ॐ अक्षर पंच परमेष्ठी को बतलानेवाला वाचक है और ॐ का भाव अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु की वीतरागी पूर्ण दशा, पाँचों ही पद की पूर्ण वीतरागी निर्विकल्पदशा। भले आचार्य उपाध्याय में थोड़ी हो, परन्तु वीतरागी विज्ञान और वीतरागी रमणतारूप दशा को पाँचों को बतलानेवाला ॐ शब्द है। समझ में आया ? ॐ, ॐ को बतलाता नहीं। वह तो ... है। परन्तु ॐ पाँच पद की पर्याय को बताता है।

तो कहते हैं कि **ॐकार मन्त्र पाँचों परमेष्ठी सहित है।** और **'ऊर्ध सद्भावं' उत्तम सत्यभाव को बतानेवाला है।** अकेले ॐ... ॐ... ॐ... करे उसमें कुछ नहीं होता। कुछ वळे नहीं, इसे क्या कहते हैं ? उसमें कुछ लाभ नहीं है। ॐ... ॐ... वह तो विकल्प है। ॐकार मन्त्र का शुभराग है। परन्तु ॐ का वाच्य स्वभाव भगवान अपना आत्मा पंच परमेष्ठी जो वीतरागी विज्ञानघनसहित है, ऐसा मेरा आत्मा भी पुण्य, पाप और शरीर आदि की क्रिया से रहित अकेला वीतराग विज्ञानघन से मैं भरपूर हूँ। ऐसा अपने आत्मा को, आत्मभाव को ॐ भाव कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : इतना अधिक कहाँ कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं, देखो। **उत्तम सत्यभाव को बतानेवाला है।** है इसमें या नहीं ? देखो, यह सब शब्द में से निकलता है।

ॐकार मन्त्र... पहले कहा न ? **'परमिस्टी च संजुतं' पाँचों परमेष्ठी....** अन्तर निर्मल पर्याय को बताता है। और उनके अतिशय और शरीर को बताता नहीं। अरिहन्त का शरीर परम औदारिक है, उसे नहीं बताता, वह तो जड़ है। सिद्ध का स्वरूप पूर्ण शुद्ध है, उसे बताता है। आचार्य के शरीर, वाणी, कर्म को वह नहीं बताता। अन्तर में वीतरागी विज्ञानघन शुद्ध चैतन्य की दृष्टि, ज्ञान, रमणता हुई, उसे ॐ बताता है। समझ में आया ? ऐसे उपाध्याय। उपाध्याय। आत्मा बारह अंग तो भले पढ़े शास्त्रादि। वास्तविक

उपाध्याय तो उसे कहते हैं, ॐ बताता है। भगवान निर्मल परमानन्द की मूर्ति, उसमें उप अर्थात् समीप होकर ध्ययन अर्थात् ध्यान एकाग्रता हो, उसे वास्तव में उपाध्याय कहते हैं। समझ में आया? यह ॐ बताता है।

और साधु। साधु कोई अट्ठाईस मूलगुण पाले या नग्नदशा रहे, वह साधुपद नहीं। साधु अपने शुद्ध स्वभाव वस्तु है, उसमें लीन होते हैं। एकाकार निर्विकल्प सुधापान—अमृत आनन्द को पीना। अपने आत्मा में अमृत अतीन्द्रिय रस पड़ा है, उसे पीते हैं, आनन्द का अनुभव करते हैं, उसे साधु कहा जाता है। कहो, शोभालालजी! कभी सुना नहीं, समझे नहीं। जय भगवान! ॐ... ॐ करे और जाओ।

तो कहते हैं कि कैसा है भगवान? सत्य पदार्थ प्रभु आत्मा उत्पन्न भगवान वस्तु है वस्तु आत्मा। ऐसा कहते हैं। कहीं है एक जगह कहा है। ४४८ पृष्ठ है। लो! यही निकला। खोला वहाँ यह निकला। गाथा है ८०९ भाई! गाथा ८०९। क्या कहते हैं?

अस्ति चरन संजुत्तं, अस्ति सरुवेन सहाव निम्मलयं।
विगतं अविगत रुवं, चेयन संजुत्त निम्मलो सुधो ॥८०९॥

छह गुण हैं न भाई! यह अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व। यह सामान्य छह गुण हैं। ये प्रत्येक पदार्थ में हैं। तो आत्मा में वस्तुत्वगुण का क्या स्वरूप है? समझ में आया? कहा न यहाँ? उत्तम सत्य भाव को बतलानेवाला है। उत्तम अन्दर स्वभाव है, उसे ॐ शब्द बतलानेवाला है। यदि जाने तो ॐ शब्द निमित्त कहा जाता है। वरना ॐ बतलानेवाला है या ॐ से ज्ञात हो जाये, ऐसा नहीं। तो कैसी वस्तु बताते हैं? कि वह जीव का वस्तुपना यह है। वस्तुपना। वस्तु आत्मा, वस्तुपना भाव। समझ में आया? आत्मा वस्तु है वस्तु। उसमें बसनेवाले गुण, इसलिए उसे वस्तु कहते हैं। यह वास्तु नहीं लेते? वास्तु नहीं कहते? नये मकान में प्रवेश करते हैं या नहीं? हमारे यहाँ उसे वास्तु कहते हैं। (गृह) प्रवेश। यहाँ वास्तु कहते हैं। वास्तु लो मकान में। तो वास्तु मकान है, उसमें वास्तु लेना है या मकान बिना अद्धर में कहीं आकाश में लेना है?

इसी प्रकार आत्मा अपनी वस्तु, अपने में वस्तुपनेसहित है। देखो, **जीव का**

वस्तुपना यह है कि यह लोक में बसता है... यह तो भाई ने लिया। '**भुवने**' देखो, '**वस्तुत्वं वसति भुवने**' वस्तु, ऐसा कहा। देखो, कितने ही कहते हैं या नहीं? सिद्ध अलोक में क्यों नहीं जाते? अरे! सुन तो सही। '**वस्तुत्वं वसति भुवने**' यह वस्तु ऐसी है कि लोक में बसती है। पहले बाहर की बात की। समझ में आया? यह कहते हैं या नहीं? सिद्ध क्यों नहीं जाते? धर्मास्तिकाय का अभाव है तो ऊपर नहीं जाते। सब झूठा है। वस्तु का वस्तुत्व लोक में रहने से वस्तुत्व है। लोक की चीज़ है तो लोक में ही रहती है। लोक्यंति इति लोक:। लोक में जिसे ज्ञान में आता है कि यह चीज़ है, उसे वस्तु कहते हैं। समझ में आया?

और अब भाव से लेते हैं। यह क्षेत्र से लिया। '**भुवने**' शब्द है न भाई! '**भुवने**' '**वस्तुत्वं वसति भुवने**' वस्तु उसे कहते हैं कि उसका वस्तुपना जगत में रहता है, बाह्य से। और '**वस्तुत्वं न्यान दंसन अनन्तो**' अब आया। भगवान आत्मा वस्तु है तो उसका वस्तुपना, भावपना क्या? **इसके भीतर अनन्त ज्ञान...** अपना आत्मा वस्तु है, उसमें अनन्त-अनन्त एक समय में बेहद ज्ञान (रहता है)। पूछते थे न सवेरे कि एक समय क्या? एक समय में अनन्तगुण साथ में रहते हैं, ऐसा कहते हैं न हर समय? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग का एक समय होता है सूक्ष्म। उसके दो भाग नहीं होते। उस काल के दो भाग नहीं होते। एक समय में भगवान आत्मा में अनन्त, दोपहर में जो शक्तियाँ चलती हैं, वह एक समय में अनन्त शक्तियाँ रहती हैं। समझ में आया? एक साथ अनन्त शक्तियाँ रहती है तो उसमें से थोड़ी बात करते हैं। उसका वस्तुपना अनन्त ज्ञान। बेहद अपरिमित शक्ति स्वभावरूप ज्ञान, वह वस्तु का वस्तुपना।

वस्तु का रागपना, पुण्यपना, विकार का व्यवहारपना, वह वस्तुपना नहीं। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, शुभाशुभभाव होते हैं, परन्तु वह शुभाशुभ वस्तु का वस्तुपना नहीं है। समझ में आया? वस्तु का वस्तुपना अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, ऐसे अनन्त आनन्द। यह बाद में लेंगे। ऐसे अनन्त वीर्य जिसमें बसता है। कहो, समझ में आया? वास्तु का समझे, इस वस्तु को नहीं। भाई! मकान बनाया दो लाख का। आज प्रवेश करना है। बुलाओ सगे-सम्बन्धियों को, परिवार को, गाँव के प्रमुख को बुलाओ। क्या है? वह तो धूल की बात है। धूल में प्रवेश किया। अपने आत्मा में तो प्रवेश किया नहीं।

वस्तु भगवान आत्मा में वस्तुपना बेहद चतुष्टय-चतुष्टय पड़े हैं। बेहद का अर्थ अपरिमित ज्ञान अन्तर में, अपरिमित दर्शन, अपरिमित आनन्द, अपरिमित वीर्य। समझ में आया? ऐसा-ऐसा अनन्त वस्तुपना अनन्त गुण पड़े हैं कि जिसमें बसे, उसे वस्तु कहते हैं। चन्दुभाई! कौन सी वस्तु? आत्मा की। आत्मा वस्तु है तो उस वस्तु में ऐसे अनन्त गुण बसते हैं। और उसमें बस्ती करना, रहना, अपनी श्रद्धा शुद्ध चैतन्यद्रव्य मैं हूँ, ऐसी श्रद्धा करके, स्व-संवेदनज्ञान से ज्ञान का वेदन करके, चारित्र स्वरूप में आनन्द का वेदन करके उसे द्रव्य-गुण में एकाकार होकर बसना, वह वस्तु में बसा है, रहा है—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? यह पुण्य और पाप विकल्प और शरीर में बसना, वह आत्मा का वस्तुपना है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! वस्तु अभी तो क्या है?

तो कहते हैं कि अनन्त चतुष्टय रहता है। देखो, पाठ है न। **'नंतानंत चतुस्टं'** अनन्त चतुष्टय भगवान आत्मा अन्तर में विराजमान अनन्त शक्तियाँ, अनन्त चतुष्टयसहित अनन्त शक्तियाँ हैं। **'वस्तुत्वं तिलोय निम्मलो सुधो' इसका वस्तुपना यह है कि तीन लोक में निर्मल शुद्ध पदार्थ है।** तीन लोक में अपना पवित्र स्वभाव वस्तु में रहता है। उसे वस्तुपना और उसे वस्तु कहते हैं। ऐसी वस्तु की जिसे अन्तर्दृष्टि होती है, उसे सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी वस्तु की दृष्टि बिना कभी पुण्य-पाप करो, दया, दान पाले, शरीर की क्रिया हो, उसमें सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? वह वस्तु का गुण लिया है न? **जीव में वस्तुत्व के रहने से ही वह संसार अवस्था से अशुद्ध कार्य को, मुक्तावस्था में शुद्ध आनन्द में मग्न रूप कार्य को करता है।** वस्तु का है न कार्य? तो संसार में अशुद्ध अवस्था, वह वास्तव में तो वस्तुत्वगुण का कार्य है ही नहीं। वास्तव में शुद्ध स्वभाव वस्तुत्व है, उसकी तो शुद्ध परिणति होना, वही उसकी परिणति है। विकार परिणति जो है, वह अज्ञानभाव से या वर्तमान पर्याय से हो, वह वास्तव में गुण की परिणति और गुण की पर्याय गिनने में आती ही नहीं। क्या विकार गुण की पर्याय है? गुण शुद्ध है। तो उसकी शुद्ध परिणति अन्दर में शुद्ध निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वही उसकी वास्तव में वस्तुपने की पर्याय है। कहो, सेठ! सेठी! क्या आया? वस्तु किसे कहते हैं? देखो, आया न!

मुमुक्षु : माल हो उसे वस्तु कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : माल को वस्तु कहते हैं। माल क्या है यहाँ? माल आत्मा है। क्या धूल माल है पैसा-बैसा? तम्बाकू और पैसा धूल माल है? धूल है धूल। धूल है, मिट्टी है, पुद्गल है, विष्टा का रूपान्तर है। विष्टा हो जाती है या नहीं? यह पुद्गल विष्टा हो जाती है। अच्छा-अच्छा भोजन करे परन्तु आठ घण्टे में विष्टा हो जाता है। क्या है? वह तो विष्टा की पर्याय है पुद्गल की, वह आत्मा नहीं।

भगवान आत्मा, कहते हैं कि **उत्तम सत्यभाव को बतानेवाला है।** अत्यन्त सत्य स्वभाव पड़ा है अन्दर में। अनन्त ज्ञानादि अनन्त शक्तियाँ वह ॐ शब्द बतलानेवाला है। यदि देखे तो बतलानेवाला है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? और **उसमें जो बिन्दु का स्थान है वह...** बिन्दु है न ॐ में बिन्दु, शून्य... शून्य। वह **नमस्कार के योग्य...** नमस्कार के योग्य सिद्धपद है। सिद्धपद जिसमें शून्य है। शून्य अर्थात् विकल्प और रागादि बिल्कुल नहीं। ३४वीं गाथा। समझ में आया? **'विंदस्थाने नमस्कृतं'** यह भगवान आत्मा सिद्ध समान शून्य है। शून्य का अर्थ? जिसमें विकार, शरीर का अभाव है और अकेले पूर्ण अनन्त गुण आदि का सद्भाव है। ऐसी शक्ति में दृष्टि करना, उसका ज्ञान करना, उसमें रमना, उसने पंच परमेष्ठी को पहिचाना। समझ में आया? उसने पंच परमेष्ठी को पहिचाना। उसने पंच परमेष्ठी की प्रतीति की। दूसरे पंच परमेष्ठी की प्रतीति की नहीं। यह पाँच परमेष्ठी हम मानते हैं, ऐसा नहीं। पंच परमेष्ठी तो अपना स्वरूप वीतराग निर्मल है, उसमें अन्तर दृष्टि करके प्रतीति, ज्ञान, रमणता करना, उसने पंच परमेष्ठी को पहिचाना। दूसरे पंच परमेष्ठी को पहिचानते नहीं। कहो, समझ में आया?

'सर्वन्यं सुध तत्त्वं च' कैसे हैं? यह भगवान सर्वज्ञ हैं। ॐ से वाचक अपना स्वरूप। सर्वज्ञ परमात्मा तो पर है, परन्तु अपना वाचक ॐ से सर्वज्ञ स्वभाव अपने में पड़ा है। सर्वज्ञ—एक समय में तीन काल, तीन लोक को राग के अवलम्बन बिना, निमित्त के आश्रय बिना अपने ज्ञान में जाननेवाला, ऐसा सर्वज्ञस्वभाव अपने में पड़ा है। ऐसा सर्वज्ञस्वभाव अरिहन्त-सिद्ध को प्रगट हो गया है। समझ में आया? तो ऐसे **सर्वज्ञ व शुद्ध परमात्मतत्त्व का प्रकाशक है।** सर्वज्ञ को भी ॐ प्रकाशित करता है और अपना

शुद्ध परमस्वरूप परमानन्द, उसे भी प्रकाशित करता है। दोनों को ॐ प्रकाशित करता है। **शुद्ध परमात्मतत्त्व का प्रकाशक है। वही देव को झलकानेवाला है।** सर्वज्ञ वीतराग मैं ही जिनेन्द्ररूप हूँ। मेरा ही स्वभाव समस्वभावी वीतराग विज्ञानघन है। वीतराग विज्ञानघन समस्वभावी मेरा है, ऐसी दृष्टि और ज्ञान में लेना, उसे ॐ बतलानेवाला है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बातें परन्तु यह। जाप करो भाई जाप। जाप करते हो या नहीं? अभी जाप करके आये या नहीं? किसका जाप? वह तो विकल्प है। शोभालालजी!

मुमुक्षु : कुछ न हो, उसकी अपेक्षा तो अच्छा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ न हो उसकी अपेक्षा अच्छा कहाँ है? वह तो शुभाशुभभाव तो अनन्त काल से चले आये हैं। उसमें कुछ नयी चीज़ नहीं है। अशुभभाव भी अनादि काल से चले आये हैं, शुभभाव भी अनन्त बार किये। नौवें ग्रैवेयक गया। जैन साधु दिगम्बर होकर, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये। आठ वर्ष में साधु हुआ, करोड़ पूर्व... साधुपद लिया। तो अनन्त बार प्रत्येक प्राणी ने लिया। तो ऐसे आठ वर्ष कम... करोड़ पूर्व-करोड़ पूर्व। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ और ५६ हजार करोड़ वर्ष चले जाते हैं। एक पूर्व में ७० लाख करोड़, ५६ हजार करोड़ वर्ष चले जाते हैं। ऐसे करोड़ पूर्व। इतनी बार दिगम्बर साधुपना अनन्त बार लिया। तो णमोकार कितने गिने होंगे? पण्डितजी! णमो अरिहंताणं। एक दिन का एक... यह तो साधु हुआ न द्रव्यलिंग? तो भी सवेरे-शाम प्रतिक्रमण करता है, सामायिक करता है। तो एक दिन में तो बहुत बार णमोकार गिनता है, बहुत बार ॐ जपता है एक दिन में। ऐसे-ऐसे ७० लाख करोड़ और ५६ हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व। ऐसे-ऐसे करोड़ पूर्व। कितने णमोकार गिने इसने?

मुमुक्षु : एक में भी माल नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक में भी माल नहीं। पुण्यबन्ध होता है। शुभराग से पुण्य बँधता है, वह आत्मा नहीं, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? जगत को भारी कठिन! होता है, निश्चय का अनुभव, सम्यक् आत्मा का भान हुआ। मैं निर्विकल्प शुद्ध हूँ, ऐसा अनुभव हुआ। पश्चात् ॐ आदि का स्मरण हो, वह विकल्प आता है, उसे व्यवहार कहा जाता है। पुण्यबन्ध का कारण कहा जाता है, परन्तु वस्तु के भान बिना अकेले

ॐ... ॐ... जाप करे, उसमें उसका व्यवहार भी गिनने में नहीं आता। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है। देखो! यह तारणस्वामी ऐसा कहते हैं। तुमको तो खबर भी नहीं। दरकार नहीं की न, भाई! वास्तव में तो इसने दरकार नहीं की। ऐसा अपना दोष लेना चाहिए न। अपनी तैयारी हो तो समझानेवाले मिले बिना रहे नहीं।

तो कहते हैं, देखो! तारणस्वामी इस सम्यग्दर्शन की ३४वीं गाथा में कहते हैं कि सर्वज्ञ को बतलानेवाले और शुद्ध आत्मतत्त्व को बतलानेवाला प्रकाश हो जाये। ॐ ध्वनि। दुंदुभि बजती है न, भगवान के समवसरण में साढ़े बारह करोड़ बाजे बजते हैं। सुना है न? साढ़े बारह करोड़ बाजे बजते हैं। वह तो बाहर है। अन्तर में ॐ ध्वनि भाव में निकला, वह अन्दर साढ़े बारह करोड़ ध्वनि की आवाज है। समझ में आया? समवसरण में एक साथ साढ़े बारह करोड़ ध्वनि उठती है। दुंदुभि। एकदम नगाड़ा। नगाड़ा कहते हैं न? नगारुं नहीं? नगारुं होता है न चमड़े का नहीं होता? नगारुं। नौबत-नौबत-नौबत। यह तो नौबत साधारण। वह तो देवताओं ने बनाया हुआ नौबत। साढ़े बारह करोड़ समवसरण में दुंदुभि बजती है। अरे जीवो! सुनना हो तो यहाँ आओ, ऐसे दुंदुभि में से आवाज निकलती है। अरे भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा समवसरण में सर्वज्ञ वीतराग विराजमान हैं। जीवो! तुम्हें कल्याण करना हो तो यहाँ आओ। ऐसी दुंदुभि बजती है। समझ में आया? तो यहाँ कहते हैं कि ॐ **सर्वज्ञ व शुद्ध परमात्मतत्त्व का प्रकाशक है।** यह ३४वीं गाथा हुई। ३५ (गाथा)।

परमिस्टी उत्पन्नं सुधं, सुध संमत्त संजुतं।
तस्यास्ति गु ण प्रोक्तं च, न्यानं सुध समं धुवं॥३५॥

क्या कहते हैं? '**परमिस्टी सुधं उत्पन्नं' अरहन्त, सिद्ध परमेष्ठी शुद्धभाव को पैदा कर चुके हैं।** अपने में शुद्धभाव जो पवित्र भाव जो अनादि का गुण में था, गुण में था, शक्ति में था। समझ में आया? दृष्टान्त दिया था न पहले छोटी पीपर का, नहीं? लींडीपीपर। छोटी पीपर होती है न? पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट पड़ी है। चरपराहट पीपर के दाने में। तुम्हारे चरपराई कहते हैं न? हमारे में तीखाश कहते हैं तीखाश। और हरा रंग पड़ा है उसमें पूरा हरा रंग पड़ा है। है तो पर्याय में प्रगट होता है। प्राप्त की प्राप्ति है। है उसमें से प्राप्ति होती है। बाहर से नहीं होती।

इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अन्दर में पूर्ण ज्ञान-आनन्द आदि पद पड़ा है। शुद्धभाव अन्दर में शक्तिरूप पड़ा है। जैसे पीपर में शक्तिरूप, सत्त्वरूप, गुणरूप, भावरूप चौंसठ पहरी चरपराई की सामर्थ्य पड़ी है। चौंसठ अर्थात् पूर्ण। इसी प्रकार भगवान आत्मा में पूर्ण अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन शुद्धभाव पड़ा है। **सिद्ध परमेष्ठी शुद्धभाव को पैदा कर चुके हैं।** ऐसी शुद्ध शक्ति प्रगट कर चुके हैं। अरिहन्त और सिद्ध। प्रत्येक पदार्थ आत्मा में शक्तिरूप है। उन्हें प्रगट हो गयी है।

'सुध संमत्त संजुतं' उनके शुद्ध सम्यग्दर्शन है। क्षायिक सम्यग्दर्शन परम अवगाढ़। अरिहन्त, केवली आदि, सिद्ध को परम अवगाढ़ शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया है। परमानन्द। असंख्य प्रदेश हैं, आत्मा असंख्य प्रदेशी है। प्रदेश-प्रदेश में अनन्त गुण व्याप्त हैं। समझ में आया? असंख्य प्रदेशी आत्मा है। प्रदेश समझते हो? प्रदेश है। एक अस्तित्व गुण है, वहाँ इतने में है। उसमें कहीं प्रदेशत्वगुण की व्याख्या तो की है, हों! यह ... है न ४४८? ... है उसमें, अस्तित्व में डाला है। अस्तित्व में डाला है। ४४८। यह देखो, अस्तित्व, इसके पहले। ८०७ और ८०८ गाथा। देखो।

अस्ति अस्तिति लोकं, वर दंसन न्यान चरन संजुत्तं।

यह अस्तित्वगुण की व्याख्या चलती है। अस्ति—होनापना, अपने में शुद्धभावरूप, अस्ति, पूर्णानन्द अनन्त गुण की अस्ति अपने में है, अस्तित्वगुण के साथ है। है? मिला है या नहीं ८०८?

अस्ति अस्तिति लोकं, वर दंसन न्यान चरन संजुत्तं।
दंसेइ तिहुवनग्गं, न्यानमयो न्यान ससरुवं॥८०८॥
अस्ति चरन संजुत्तं, अस्ति सरुवेन सहाव निम्मलयं।
विगतं अविगत रुवं, चेयन संजुत्त निम्मलो सुधो॥८०९॥

क्या कहते हैं? देखो! अस्तित्वगुण की व्याख्या करते हैं। हमारे मास्टर समझाते हैं। मास्टर! छह गुण समझाते हैं बालकों को। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व और प्रदेशत्व। छह गुण सर्व पदार्थ में है। किसी पदार्थ में नहीं, ऐसा नहीं। जितने (पदार्थ) हैं उन सबमें है। तो यह अस्तित्वगुण की आत्मा की व्याख्या तारणस्वामी

अध्यात्म से करते हैं। समझ में आया?

जीव द्रव्य है तीन लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशों... देखो, आया। '**ति लोकं**' है न भाई! यह त्रिलोक शब्द में से निकाला है प्रदेश। '**अस्ति अस्तिति लोकं**' भगवान आत्मा अरिहन्त का, सिद्ध का और अपना। जीवद्रव्य तीन लोक प्रमाण। '**अस्ति अस्तिति लोकं**' ऐसा शब्द है न भाई! दो अस्ति। अर्थात् अस्तित्वगुण और प्रदेशगुण दोनों साथ में ले लिये। **तीन लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशों का धारी है,...** भगवान जाने असंख्य प्रदेश किसे कहना? चुनीभाई! भगवान तो जानते ही हैं न! परन्तु तुमने जानने का प्रयत्न किया? क्या कहते हैं, देखो! तारणस्वामी छह गुण को अध्यात्म में उतारते हैं। अस्ति, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघु आदि। समझ में आया? अपने स्वभाव में प्रत्येक आत्मा में जीवद्रव्य तीन लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेश का धारी है। यह प्रदेशत्वगुण उसमें है। प्रदेशगुण के कारण से नियत प्रदेशत्व यह ४७ शक्ति में आ गयी है। ४७ शक्ति में नियतप्रदेश। असंख्य प्रदेश निश्चय कायम आत्मा रखता है। एक परमाणु है, परमाणु है न रजकण छोटा। छोटा कण। उसका गज से माप करे एक, दो, तीन, चार, पाँच... तो असंख्य परमाणु के गज जितना आत्मा चौड़ा है। पहोळो क्या? चौड़ा। पहोळो समझते हो? लम्बा। यह कपड़ा है या नहीं देखो यह कपड़ा। यह कपड़ा कितना चौड़ा है, देखो! यह कपड़ा चौड़ा है या नहीं? इतना है। इसी प्रकार आत्मा, एक रजकण से माप करे परमाणु के गज से, ऐसा सर्वज्ञ ने माप करके बतलाया है। तो इतना एक रजकणरूपी गज है। गज होता है न वस्त्र को मापने का? यह २५ गज है, ५० गज है। तो आत्मा कितना है? कि एक परमाणु के गज से माप करे। एक परमाणु जितने में रहे उतने अंश को प्रदेश कहते हैं। इतना आत्मा असंख्य प्रदेश का एक समूह है। एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण पड़े हैं। भगवान जाने क्या है? समझ में आया? लड़के यह वाँचे तो याद रहता है, वरना नहीं रहता। ऐई! शोभालालजी! यह कहते थे कि लड़के तो कुछ सुनते ही नहीं, ऐसा कहते थे। लड़कियाँ तो बेचारी फुरसत में हों तो थोड़ा-थोड़ा वाँचे। हमारे अंग्रेजी पढ़ना है, हमारे यह करना है। परन्तु यह सुन तो सही थोड़ा। तुझे हित करना है या नहीं मनुष्यपने में?

तो कहते हैं, **असंख्यात प्रदेशों का धारी है...** और **निश्चय सम्यग्दर्शन... 'वर'**

है न? '**वर**'? '**वर**' अर्थात् निश्चय। '**वर**' अर्थात् उत्तम, निश्चय। व्यवहार समकित है, वह तो राग है, विकल्प है। वह भी थोड़ा कहेंगे। **निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान तथा निश्चय सम्यक्चारित्र सहित है,...** कौन? अपना आत्मा। अपना अन्तर स्वरूपसहित है। समझ में आया? '**तिहुवनग्गं दंसेइ**' **तीन भुवन के अन्त तक सर्वलोक को देखनेवाला है।** तीन भुवन लिये हैं, परन्तु वास्तव में तो तीन भुवन तो लोक को कहते हैं। परन्तु उसमें अध्याहार रह गया है। लोकालोक को देखनेवाला है, ऐसा कहना है, परन्तु शब्द में ऐसा आया कि **तीन भुवन के अन्त तक सर्वलोक को देखनेवाला है।** परन्तु सर्व लोक नहीं, परन्तु लोकालोक। लोक और अलोक को देखनेवाला शक्ति में, अपने स्वभाव में पड़ा है।

'**न्यानमयो न्यान ससरुवं**' **ज्ञानमयी है तथा ज्ञान ही जिसका अपना स्वरूप है...** ज्ञान ही अपना रूप है। ज्ञानपुंज अपना रूप है। जैसे शक्कर मिठासरूप है, सफेदरूप है, उसी प्रकार भगवान अकेला ज्ञानरूप है। उसके अस्तित्व को अस्तित्वगुण बताता है। समझ में आया? '**चरन संजुत्तं अस्ति**' **चारित्र अर्थात् वीतरागता सहित है।** स्वभाव उसका वीतरागता निर्विकल्प आनन्दसहित है और **यह जीव अपने स्वरूप से स्वभावमयी निर्मल शुद्ध अस्तित्व को रखनेवाला है।** देखो, **यह जीव अपने स्वरूप से...** है न? '**सरुवेन सहाव निम्मलयं अस्ति**' तारणस्वामी की अध्यात्म की ... की ऐसी शैली थी कि किसी भी बात में अध्यात्म उतार देते हैं। अध्यात्म के तरंग थे तरंग। यह आत्मा ऐसा है। अस्ति है इतना नहीं, परन्तु **यह जीव अपने स्वरूप से स्वभावमयी...** स्वभावमयी **निर्मल शुद्ध अस्तित्व को रखनेवाला है।** यह अस्तित्वगुण बताता है।

देखो, अब दो शब्द पड़े हैं। '**विगतं अविगत रुवं**' अस्ति-नास्ति करते हैं। क्या? कि **स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण के न होने से जीव अरूपी अर्थात् अमूर्तिक है...** अमूर्तिक है। **तथापि प्रदेशत्वगुण के रखने से प्रदेशी है, अर्थात् असंख्यात प्रदेशी है।** समझ में आया? असंख्यात प्रदेशी वस्तु। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श से रहित परन्तु असंख्य प्रदेश से सहित। समझ में आया? यह तुम्हारी पुस्तक में से बताते हैं। यह तारणस्वामी ऐसा कहते हैं। खबर नहीं। पुस्तक कभी देखी नहीं, वाँची नहीं, विचारते नहीं।

'चेयन संजुत्त निम्मलो सुधो' चेतनासहित परम शुद्ध निरंजन है। दो गुण बताये। अस्तित्व और प्रदेशत्व दो बताये। एक गुण में दो गुण बताये। अस्तित्व और प्रदेशत्व। छह गुण में से दो तो इसमें कह दिये और वस्तुत्वगुण की व्याख्या अपने अभी की। पश्चात् प्रमेयत्व आदि है। अप्रमेय लिया है परन्तु प्रमेय से है। और फिर अगुरुलघु है। समझ में आया? पश्चात् अमूर्त लिया। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि तेरा स्वभाव अनन्त गुण जो शुद्ध है, उसका अस्तित्व बताते हैं। कहो, समझ में आया? यहाँ आया है, ३५। ३५ आयी न?

उन्हीं के ही यथार्थ देवपने का गुण है... उनको यथार्थ देवपने की शक्ति की प्रगटता है। अपने में देवपने की शक्ति अन्दर में पड़ी है। जितना सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होता है, उतनी प्रगट होती है। बाकी पूर्ण आत्मा में पड़ी है। कहो, समझ में आया? **उन्हीं के ही यथार्थ देवपने का गुण है तथा उन्हीं के देवपना कहा भी गया है.. 'न्यानं सुध समं धुवं' उन्हीं के समता सहित अविनाशी शुद्धज्ञान है।** अर्थात् कि वीतरागी विज्ञानघन है, ऐसा कहना है। **'न्यानं सुध समं धुवं' 'समं'** अर्थात् वीतरागी अकषायपनेसहित ज्ञानानन्द आत्मा है, उसे परमात्मा कहते हैं। उसके अपने आत्मा को भी अपना परमात्मा कहा जाता है। ऐसी अन्तर में प्रतीति और ज्ञान करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। कहो, समझ में आया? .... याद आया वापस। यह व्यवहार सम्यग्दर्शन की व्याख्या की है। ३०८ पृष्ठ पर है। व्यवहार सम्यग्दृष्टि की व्याख्या की है। ३०८ न? ३०८। निर्मल पर्याय को ही व्यवहार समकित कहते हैं। ३०८ पृष्ठ। ५६५... ५६५ (गाथा)। देखो!

विवहारं संमत्तं, देव गुर सुध धम्म संजुत्तं।

देखो, यह व्यवहार समकित की व्याख्या।

दंसन न्यान चरित्तं, मल मुक्कं विवहार सम्मत्तं॥५६५॥

व्यवहार सम्यग्दर्शन यह है कि निर्दोष शुद्ध देव, गुरु तथा धर्म का श्रद्धान किया जावे... एक बात। देव-गुरु निर्दोष। देव अरिहन्त निर्दोष, निर्ग्रन्थ गुरु वीतरागी परिणति चारित्रवन्त। और धर्म अहिंसा—रागरहित आत्मा के स्वभाव की अहिंसक

परिणति अन्दर में रागरहित हो, ऐसे धर्म का श्रद्धान किया जाये, उसे व्यवहार समकित कहते हैं। वह कहते हैं न व्यवहार... व्यवहार। **दोषरहित शुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्‌चारित्रमय भाव का अनुभव किया जावे, सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है।** पर्याय होती है न पर्याय? यह त्रिकाल द्रव्य है, त्रिकाल गुण है तो उसमें सम्यग्दर्शन पर्याय है तो इस अपेक्षा से पर्याय को व्यवहार (कहा है)। है तो निर्विकल्प श्रद्धा और अनुभव। आहाहा! समझ में आया?

यह तो बनारसीदास ने लिया है न परमार्थवचनिका में? मोक्षमार्ग साधन करना, यही व्यवहार है। अर्थात् कि वस्तु जो है त्रिकाल गुण द्रव्य और त्रिकाल एकरूप रहनेवाली, वह निश्चय है। उसके अन्तर में... व्यवहार बाँधते हैं लोग जो व्यवहार समकित और राग को, उससे रहित होकर होकर अपने शुद्ध स्वभाव की अन्दर निर्विकल्प श्रद्धा का अनुभव करना, श्रद्धा करना, उसका एक अंश देखकर त्रिकाल का एक अंश, उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। पण्डितजी! देखो इसमें पाठ है या नहीं?

'**विवहारं संमत्तं**' मूल पाठ है, देखो। '**देव गुर सुध धम्म संजुत्तं**' देखो '**देव गुर सुध धम्म संजुत्तं**' शुद्ध शब्द पड़ा है। '**दंसन न्यान चरित्तं**' दर्शन-ज्ञान चारित्रसहित अपना आत्मा। '**मल मुक्कं विवहार सम्मत्तं**' यह विकल्प जो है देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का विकल्प, वह नहीं। यह तो कहते हैं कि जाओ, वह तो असद्‌भूत में गया। असद्‌भूतव्यवहार। यहाँ सद्‌भूतव्यवहार। सद्‌भूतव्यवहार को यहाँ निश्चय कहा है। अपनी पर्याय है। निश्चय सम्यग्दर्शन को यहाँ व्यवहार कहा है, पर्याय का भेद देखकर। थोड़ी सूक्ष्म बात है।

फिर से। हम एक बार नहीं लेते हैं। आत्मा है या नहीं वस्तु? तो उसमें वस्तु अनादि-अनन्त है और अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि चतुष्टय आदि से भरपूर अनन्त शक्ति का भण्डार परन्तु अनादि-अनन्त गुण है। उस गुण में से जो एक समय की पर्याय प्रगट होती है, वह भेद देखकर, भेद देखकर, उसे व्यवहार कहा जाता है। भेद देखकर। त्रिकाल अभेद है। क्या कहा? अभी भेद-अभेद भी सुना न हो। तम्बाकू का जत्था, वह

अभेद और छोड़ना, वह भेद। उसमें से छोड़ देना। हमारे शोभालालजी को (कहते हैं)। क्यों सेठ! जत्थाबन्द आता है पचास मण, सौ मण, पाँच सौ मण, वह अभेद और उसे छोड़ देना यह भेद, ऐसा है ? क्या ऐसा है ? देखो! इस दृष्टान्त में से सिद्धान्त निकालते है। अपना आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुण का जत्था है उसमें। अनन्त शक्ति का एकरूप जत्था है, वह अभेद। और उसमें से सम्यग्दर्शन की पर्याय निर्मल, शुद्ध, निश्चय निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह तीन काल की अपेक्षा से एक समय का भेद हुआ, तो उस भेद को यहाँ व्यवहार समकित कहते हैं। समझ में आया ? उस जत्था में से पर्याय निकालनी है। ... कहते हैं न तुम्हारे ?

भगवान आत्मा, आहाहा! क्या कहते हैं, देखो! **व्यवहार सम्यग्दर्शन यह है कि निर्दोष शुद्ध देव, गुरु तथा धर्म का श्रद्धान किया जावे तथा दोषरहित शुद्ध सम्यग्दर्शन...** दोषरहित का अर्थ यह है कि निर्विकल्प। जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, उसकी बात यहाँ है ही नहीं। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। वह नहीं। अपना परमात्मा अनन्तगुण का पिण्ड प्रभु शुद्ध भण्डार पड़ा है, उसमें आत्मा का परिणाम अभिमुख करके उसकी प्रतीति, ज्ञान करना, वही निर्मल पर्याय, वीतरागी पर्याय को यहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन, अभेद में से भेद हुआ, इस अपेक्षा से व्यवहार कहा गया है। बनारसीदास की परमार्थ वचनिका में भी ऐसा लिखा है कि निश्चय आत्मद्रव्य, वह निश्चय है और मोक्षमार्ग शुद्ध निश्चय मोक्षमार्ग की पर्याय साधना, वह भी व्यवहार है। समझ में आया ? क्या कहते हैं ? इसमें कितना याद रहे ? सेठ! एक घण्टे में तो बहुत बातें आती हैं। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है, वह नहीं। निर्विकल्प की अपेक्षा से भी त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से भेद पड़ा, इस अपेक्षा से। समझ में नहीं आया ? सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह पर्याय की अपेक्षा से यहाँ निश्चय लेकर जानना है न भेद है। उसे तो अभेद हो गया। उसे तो है नहीं।

यहा तो शास्त्र में अपना आत्मा है शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें से केवलज्ञान हुआ न, केवलज्ञान? केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, उसे भगवान कहते हैं कि सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। वह व्यवहारनय का विषय। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? पण्डितजी! केवलज्ञान, हों! केवलज्ञान, सर्वज्ञ ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य पूर्ण चतुष्टय प्रगट हो गये। भगवान शास्त्रकार कुन्दकुन्दाचार्य और पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि सुन तो सही! यह व्यवहारनय का विषय है, अनन्त ज्ञान प्रगट हुआ वह। क्योंकि वह त्रिकाल द्रव्य नहीं है।

मुमुक्षु : पर्याय पलटा करती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पलटा करती है, वह दूसरी बात। यह तो है वह अंश है। वह त्रिकाल का एक अंश है। ओहोहो! यहाँ राग की बात नहीं। पुण्य का विकल्प देव-गुरु-शास्त्र की परसन्मुख होकर विकल्प की श्रद्धा, वह तो राग आया। उसे तो यहाँ व्यवहार कहते नहीं। वह असद्भूत झूठे व्यवहार में जाता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने अनन्त गुणसम्पन्न प्रभु की शुद्धता की सन्मुख होकर पर्याय निर्विकल्प वीतरागी सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से वीतरागी सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसे त्रिकाल द्रव्य और त्रिकाल गुण की अपेक्षा से अभेद में वह अंशरूप भेद हुआ, इस अपेक्षा से उसे व्यवहार समकित यहाँ तारणस्वामी कहते हैं। ऐसा नियमसार में भी कहा गया है और परमार्थ वचनिका में ऐसा कहा गया है।

मुमुक्षु : सद्भूत?

पूज्य गुरुदेवश्री : सद्भूत व्यवहार है। पर्याय उसकी है न? समझ में आया? यह एक जगह गाथा है कहीं। नय प्रमाण से समझे तो समझना। इसमें है कहीं। ... कितना ... किसी जगह है सही। ख्याल नहीं, हों! नय प्रमाण का नोट लिखा है। नय प्रमाण एक जगह है। कहीं है सही। गाथा श्लोक है, हों!

नय प्रमाण से ज्ञान करना चाहिए। तारणस्वामी कहते हैं। निश्चयनय से और प्रमाण से। निश्चयनय अर्थात् वास्तविक त्रिकाल क्या है, अशुद्ध पर्याय का ख्याल करना और प्रमाण—त्रिकाल द्रव्य और वर्तमान पर्याय का एक साथ ज्ञान करना, वह

प्रमाणज्ञान है। निश्चय से करना और प्रमाणज्ञान से वस्तु के स्वरूप की पहिचान करना। परन्तु कुछ गरज नहीं होती। गरज को क्या कहते हैं ? गरज कहते हैं ? हिन्दी में। चाहना है नहीं, अभिलाषा नहीं। क्या चीज़ है, मैं कौन हूँ ? सन्त क्या कहते हैं और मैं कितना समझा हूँ ? और मुझमें सम्यक्ता कितनी है ? खबर नहीं। ऐसा का ऐसा भेड़ प्रवाह। भेड़ चलते जाते हैं। गाडर समझते हो ? गाडर होती है न भेड़। भेड़-भेड़। एक भेड़ चले तो उसके कदम के पीछे सिर रखकर मुख देखकर चला जाये। पहली भेड़ कुँए में गिरे तो दूसरी भी कुँए में गिरे। भेड़ के स्वभाव की खबर है ? नीचे देखे। वह उसकी ... देखता जाये, दूसरे के पीछे तीसरा और तीसरे के पीछे चौथा। चलता ही जाये। परन्तु कहाँ जाता है ? काँटे के वाड़ा में जाता है या कुँए में, यह कुछ खबर नहीं। ऐसा अनादि 'अंधा अंध पलाय।' (अर्थात्) अन्धा चले और अन्धा दिखलानेवाला मिले। चार गति के खड्डे में चला जाये। समझ में आया ?

कहते हैं, अहो ! देखो यहाँ कहा न ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों दोषरहित हों निर्मल। तीनों निर्मल। इस **भाव का अनुभव किया जावे सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है।** क्योंकि त्रिकाल द्रव्य और गुण जो त्रिकाल एकरूप स्वभाव है, उसमें से शुद्ध अंश पर्याय निकाली, मोक्षमार्ग का शुद्ध अंश निकाला। निश्चयमोक्षमार्ग, हों! व्यवहार नहीं। व्यवहार राग नहीं। राग की क्रिया, पुण्य की क्रिया, पंच महाव्रत की, वह तो यहाँ असद्भूत में गया। वह तो खोटा है। यहाँ तो शुद्ध निर्दोष निर्विकारी आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, उसे व्यवहार समकित गिनने में आया है। दूसरी गाथा। ५६६।

न्यानेन न्यान दिट्ठं, कुन्यानं मिच्छ असुह विरयंमि।
विरयं सुह असुहं च, विवहारं सुधमप्पानं॥५६६॥

इसकी दरकार नहीं की, हों! पण्डितजी ! उलहाना तो बहुत देना पड़े, हों! एक सेठ और पण्डित दोनों साथ में बैठे हैं। इतने-इतने वर्ष गये। .... क्या चीज़ है ? अपनी पुस्तक खोजना चाहिए या नहीं ? उसमें क्या है, यह देखना चाहिए या नहीं ? तारणस्वामी जंगल में रहकर, विकल्प उठने पर यह पुस्तक बन गयी है। समझ में आया ? ५०० वर्ष हुए। तो ५०० वर्ष में ... यह क्या कहते हैं, यह तो बस हमारे में है पुस्तक। परन्तु है क्या ? समझ में आया ?

ज्ञान के द्वारा ज्ञान का अनुभव करना... देखो! विकल्प द्वारा ज्ञान को जानना, यह तो व्यवहार ज्ञान भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? **'न्यानेन न्यान दिट्ठं' ज्ञान के द्वारा ज्ञान का अनुभव करना...** स्वसंवेदनज्ञान द्वारा ज्ञान का अनुभव करना, इसका नाम व्यवहारज्ञान। शास्त्र का अभ्यास, वह तो व्यवहार भी नहीं। वह तो असद्भूत व्यवहारज्ञान है। भारी कठिन! है तो सरल बात, परन्तु इसने यह मार्ग लिया नहीं। समझ में आया? मार्ग लिया नहीं तो मार्ग का पंथ कहाँ से कटे? लिया ही नहीं। जाना है पूर्व में और जाता है पश्चिम में। दूर होता जाता है। इस प्रकार अपनी चीज़ क्या है, (उसके भान बिना चलता जाता है)।

तो कहते हैं कि **ज्ञान के द्वारा ज्ञान का अनुभव करना...** और **मिथ्या ज्ञान, मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या आचरण से... 'मिच्छ'** है न? **'कुन्यानं मिच्छ असुह विरयंमि'** कुज्ञान, मिथ्याश्रद्धा और शुभाशुभ परिणाम, वह अशुद्ध है। उससे **विरक्त होना।** शुभाशुभ परिणाम से निवृत्त होना, मिथ्यात्व से विरक्त होना, कुज्ञान से विरक्त होना और अपने ज्ञान से ज्ञान का वेदन करना। **'विरयं सुह असुहं च'** देखो, विशेष कहा। **तथा शुभ-अशुभ, मन-वचन-काय की प्रवृत्ति से विरक्त होना...** शुभ और अशुभ दोनों, हों! अशुभभाव तो हिंसा आदि मिथ्या है, वह तो ठीक, परन्तु शुभभाव जो देव-गुरु-शास्त्र का विकल्प आता है, उस शुभभाव से भी विरक्ति, अन्तर में उससे भी निवृत्ति। ऐसा **'सुधमप्पानं' शुद्ध आत्मा रूप हो जाना...** शुद्ध आत्मारूप हो जाना **व्यवहार सम्यग्दर्शन है।** पाठ में तो दोनों गाथा में व्यवहार-व्यवहार। यह जरा कठिन पड़ेगा, हों! बराबर पकड़ना समझकर। यह जरा सूक्ष्म बात है। वरना शास्त्र में व्यवहार समकित तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, छह द्रव्य की श्रद्धा, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, उसे व्यवहार कहते हैं। जो विकल्प का रूप है। जो शुभ विकल्परूप है। वह यह नहीं। समझ में आया? यह तो निश्चय सम्यक् पर्याय है, उसे भेद का अंश गिनकर व्यवहार कहा गया है। वरना गड़बड़ी हो जायेगी, हों! यह सब सेठिया इकट्ठे होकर यह सब समझने जैसा है। क्यों ... भाई! यह समझने की चीज़ है। सब सेठिया इकट्ठे होकर... यह पैसे की तो लगायी है अनन्त काल से। धूल में क्या है? पाँच-पच्चीस लाख आवे तो भी क्या और जाये तो भी क्या है? वे तो उसके कारण से आते और उसके कारण से जाते हैं। अपने

किसी प्रयत्न से आते हैं और प्रयत्न से रक्षा होती है, ऐसा तीन काल में होता नहीं। यह अपने प्रयत्न से रक्षा होती है और अपने उल्टे प्रयत्न से शान्ति का नाश होता है। समझ में आया?

शुद्ध आत्मा रूप हो जाना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। एक ही बात की है। यह व्यवहार की बात है न जरा? यह है। ३५ गाथा चलती है न! **यथार्थ देवपने का गुण है तथा उन्हीं के देवपना कहा भी गया है, उन्हीं के समता सहित अविनाशी शुद्धज्ञान है।** सर्वज्ञ परमात्मा को वीतराग शुद्ध अविनाशी ज्ञान है। अपने आत्मा में भी वीतरागज्ञानघन पड़ा है, वह अविनाशी ज्ञान है। उसके निर्विकल्प अभिमुख होकर, आत्मा के अभिमुख होकर, वस्तुपने में अभिमुख होकर, सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अनुभव करना, उसे सच्चे परमेष्ठी का अनुभव कहा जाता है। समझ में आया?

३६ (गाथा)।

पय कमले कदलं कदले पुलिनं जं जानुस्थितं।
पुलिने गगनं गगने कलसं तं ऊर्धगुनं॥
कलसे ससिनं ससिने भवनं तं पर्मपदं।
परमिस्टी पदं तं पंचदितं धुव केवलि उवनं॥३६॥

तीन बोल हैं। तीन पद की एक गाथा है। क्या कहते हैं? पाँच मिनिट रह गये। '**पय कमले कदलं**' क्या कहते हैं? **जैसे जल में कमल का पत्ता, जल से स्पर्श नहीं करता है... जल में कमल का पत्ता, जल से स्पर्श नहीं करता है...** ऐसे भगवान आत्मा राग, शरीर को स्पर्श नहीं करता। **जल में कमल का पत्ता, जल से स्पर्श नहीं करता है...** ऐसे भगवान अपना आत्मा शरीर और राग को स्पर्श नहीं करता, ऐसे आत्मा को यहाँ आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? और **कमल के पत्ते पर जल की बूँद है...** और कमल के पत्ते पर पानी की बूँद। वह बूँद कमल को स्पर्शी नहीं। कमल पानी को स्पर्शा नहीं, बूँद कमल को स्पर्शा नहीं। इसी प्रकार भगवान अपना आत्मा शरीर, इन्द्रिय को स्पर्शा नहीं। अभी। समझ में आया? यह तो कहाँ से कहाँ की बात हुई? सिद्ध की बात है? भाई! तू ही सिद्ध है, सुन तो सही। तू सिद्ध है। तूने (स्पर्शा) नहीं। कमल का पत्ता

पानी को स्पर्शा नहीं, पानी कमल के पत्र को स्पर्शा नहीं। इसी प्रकार तेरा आत्मा रागरूपी पानी को स्पर्शा नहीं। रागरूपी कमल पानी को स्पर्शा नहीं और पानी भी कमल को स्पर्शा नहीं।

'जानुस्थितं' जल की बूँद के भीतर आकाश है... देखो, तीसरा बोल। पानी में आकाश है। बूँद है न, वहाँ आकाश है। तो आकाश पानी को स्पर्शा नहीं। अन्दर आकाश पड़ा है तो पानी में आकाश है या नहीं? तो आकाश कहीं पानी की बूँद को स्पर्शता है? आहाहा! भगवान आत्मा आकाश समान, वह रागादि, शरीरादि को कभी स्पर्शा ही नहीं। ऐसा उसका निर्मलानन्द कन्द जिनेन्द्ररूप है उसका। यह तो दृष्टान्त समझ में नहीं आता? दृष्टान्त तो पढ़ो। देखो, और **घड़े में चन्द्रमा है...** देखो, पहले लिया। **जंघा पर रखा हुआ कलश आकाश में है...** जंघा के ऊपर कलश। तो कलश जंघा को स्पर्शा नहीं, कलश आकाश को स्पर्शा नहीं। समझ में आया?

'कलसे ससिनं' घड़े में चन्द्रमा है... यह चन्द्र और घड़ा दोनों भिन्न हैं। चन्द्रमा, चन्द्रमा में है; घड़े में घड़ा है। इसी प्रकार शरीर में शरीर है और आत्मा भिन्न है अभी तक। अभी भिन्न है, परन्तु भिन्न की प्रतीति और श्रद्धा की नहीं। **'ससिने भवनं' चन्द्रमा के विमान में भवन है...** चन्द्रमा के विमान में भवन है। भवन भिन्न है और चन्द्रमा का स्थान भिन्न है।

उसी तरह वह उत्कृष्ट गुण का धारी (भगवान) आत्मा... देखो, **'ऊर्धगुनं'** देखो, ऊर्ध्व स्वभावी भगवान अपना **आत्मा अपने शरीर में है, शरीर में रहकर भी शरीर से भिन्न है...** शरीर में दिखता है। परन्तु शरीर में एकमेक हुआ नहीं। ऐसा भगवान **यही उत्तम पद है।** यही भगवान अपना निजात्मा शुद्ध ज्ञानप्रकाश पुंज अपना पद है, वही परमेष्ठी पद है। अपना आत्मा ही परमेष्ठी पद है। बाहर कहाँ खोजने जाता है? समझ में आया?

यह कस्तूरी मृग है या नहीं? कस्तूरी बाहर खोजने जाता है। वह तेरी नाभि में पड़ी है। दुंटी कहते हैं? नाभि। नाभि में पड़ी है। तेरा परमात्मा तेरे अन्तर में पड़ा है, बाहर नहीं। **यही परमेष्ठी पद है, वही पाँच परमेष्ठी पद या पाँच ज्ञान प्रकाशित हैं।** यह केवलज्ञान का प्रकाश करनेवाला आत्मा ही है। अपना स्वरूप केवलज्ञान का प्रकाश

हो, ऐसा अपना स्वरूप है। **'ध्रुव केवलि उवनं' वही अविनाशी है, वही केवलज्ञान उत्पन्न होता है।** वहाँ आत्मद्रव्य में ही अपनी केवलज्ञान पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। केवलज्ञानी को प्रगट हुआ, वह स्वयं से हुआ है, अन्दर में से आया है। बाहर से कुछ आया नहीं। इसी प्रकार भगवान ध्रुव चिदानन्द मूर्ति जिसमें केवलज्ञान अन्दर शक्तिरूप पड़ा है सर्वज्ञभाव, उसकी अन्दर में केवलज्ञान की पर्याय अन्तर में से प्रगट होती है। राग से, पुण्य से, व्यवहार क्रिया से कभी केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता। ऐसी पंच परमेष्ठी की इसे यथार्थ श्रद्धा करनी चाहिए। कहते हैं कि केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हुआ? कहते हैं न लोग? संहनन से, वज्रकाय थी तो उत्पन्न हुआ। ... मिला तो उत्पन्न हुआ, उसका निषेध करते हैं। समझ में आया? कि नहीं, ऐसा नहीं। केवलज्ञान ऐसे उत्पन्न नहीं होता। अपने स्वभाव के अन्दर अन्तर एकाग्र हुआ, असाधारण स्वभाव जो पड़ा है, उसके ऊपर तैरने से केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हुई है। पर के कारण से, शरीर के संहनन से (प्रगट नहीं हुई)। संहनन समझते हो न संहनन? वज्रकाय कहते हैं न? वज्रकाय। वज्रकाय हो तो देखो, ऐसे बाहुबली बारह महीने रहे। कहते हैं, नहीं। क्या कहते हैं? वे तो अपने स्वभाव से रहे हैं। क्या वज्रकाय शरीर से रहे हैं? कौन कहता है? अपने अन्दर वज्र स्वरूप ध्रुव पड़ा है, उसका अवलम्बन करके पड़ा है तो अपने ध्रुव स्वभाव में से केवलज्ञान प्रगट—उत्पन्न होता है। शरीर और वज्रकाय से नहीं। यह ३६ गाथा हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)